बन्दी के गान

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'

मेरी बात

इस संग्रह में मेरे बन्दी-जीवन की पीड़ा, वेदना तथा उन्मुक्त-कसकन से अनुप्रेरित गीतों का संकलन है। डेढ़ वर्ष के बन्दी-जीवन में जब-जब मैंने अपने अन्तर को एकाकी अनुभव किया, उन्हीं दाहक-क्षणों में मेरे रक्त तथा प्राणों के कण-कण से इन गीतों की सृष्टि हुई है। कह नहीं सकता कि इनमें संवेदनशील संसार को अपनी स्वच्छन्द, उन्मुक्त आत्मा का क्रन्दन एवं निरंकुशता के बर्बर पंजों में जकड़ी पड़ी मानवता का शत-शत रुदन अनुभव भी होगा कि नहीं। मैंने तो आवरण-हीन किन्तु संयत शब्दों में अपने निराश जीवन का चित्रण ज्यों का त्यों कर दिया है। अपनी अनुभूतियों को ही वेदना की तरल-तूलिका द्वारा चित्रित किया है।

काव्य-प्रेमी-जगत् इसका मूल्यांकन कितना करेगा, यह तो भविष्य ही बतायगा, पर इतना तो मैं बल-पूर्वक कह सकता हूँ कि जीवन में सूने-पन से ऊबकर किसी सुखद आलम्बन की खोज में रहने वाले भावुक इसमें अपनी ही पीड़ा का गायन पायेंगे। अपने इन गीतों के पाठकों से एक अनुरोध और है, वह यह कि वे इनमें किसी प्रचलित वाद या धारा के प्रवाह को न खोजें। इसमें तो सर्वत्र हृदय को तड़पा देने वाली पीड़ा ही पीड़ा दृष्टिगोचर होगी।

'बन्दी के गान' में कारावास में उद्भूत निराशा-आशा, मिलन एवं बिछोह के ही चित्र मात्र हैं। इन गीतों का निर्माण सूने में गुनगुनाने से हुआ है। किसी भी प्रकार की लेखन-सामग्री रखने की सुविधा वहाँ नहीं

थी। अधिकांश गीत दीवारों तथा फर्शों पर कोयले द्वारा लिख-लिख कर याद किये गए हैं। अतएव इनमें धारावाहिकता का अभाव भी हो सकता है। इतना कहने के उपरान्त इस आशा से इसे पाठकों के हाथों में सौंप रहा हूँ, कि वे इसे एक बन्दी की 'थाती' के रूप में अवश्य सोत्साह ग्रहण करेंगे।

एक बात और। 'बन्दी के गान' का मुद्रण बड़ी विषम परिस्थितियों में हुआ है। आज से लगभग पाँच मास पूर्व पुस्तक की पाण्डुलिपि प्रेस में दी जा चुकी थी; किन्तु वह ज्यों की त्यों पड़ी रही। मैं यू० पी० सरकार द्वारा अपने गाँव में अवरुद्ध था; अतएव इस सम्बन्ध में स्वयं प्रेस में जाकर शीघ्रता करने में भी असमर्थ था। विगत मई मास में मेरा प्रतिबन्ध हटा लिया गया और मैंने स्वयं दिल्ली जाकर इसके मुद्रण में शीघ्रता करने का प्रयत्न किया। फलतः राजहंस प्रेस के संचालकों से मेरी भेंट हुई और उन्होंने मेरी अड़चन को सहज ही में सरल कर दिया। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। विशेषतः मॉडर्न बुक डिपो, नई सड़क दिल्ली के अध्यक्ष श्री जे० शाण्डल्य का मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनकी उदारता से यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी है। इस सम्बन्ध में मेरी कविता के अनन्य प्रेमी उदारमना श्री सेठ मोहनलालजी गुप्त बी० ए० (आनर्स) को भुला देना भी भारी कृतघ्नता होगी, जिन्होंने मेरे जलते जीवन में शीतल-वारि-सिंचन करके मुझे सदा के लिए अपना बना लिया है।

सरस्वती-मन्दिर
बाबूगढ़ (मेरठ)

—क्षेमचन्द्र 'सुमन'

अपनी
मौन
आराधना
को

भूमिका

विश्व-जीवन की इन मूर्च्छा की घड़ियों में, जब हमारे मुँह से वह नहीं निकलता जो हमारे अन्तर में है; जब मन रुद्ध है, प्राण रुद्ध हैं; वाणी, शिथिल और कातर स्वरों में केवल सभ्यता के छिद्रों की ओर इंगित करती है; जब मानस में शिशिर के डंक चुभ गये हैं, और सभ्यता के यात्रा-पथ पर निराशा की लम्बी, काली अमा का आँचल फैल गया है, तब श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के 'बन्दी के गान' दूरागत, लहराकर वातावरण में खोते-से वंशी-रव के समान हमारे सुप्त प्राणों को गुदगुदाते हुए आये हैं। मैं उनका अभिनन्दन करता हूँ।

मानव-मन में प्रकाश और अन्धकार का युद्ध सदैव चल रहा है। यही युद्ध समाज के जीवन में भी रह-रह-कर, प्रतिबिम्बित और घनीभूत हो जाता है। सभ्यता के नाम पर स्वत्व-संरक्षण के लिए मानव अगणित मानवों को मौत के घाट उतारता है; स्वतंत्रता के नाम पर वह कोटि-कोटि प्राणियों को विवश, मृतप्राय, बन्दी-जीवन बिताने को बाध्य करता है। वह माताओं से उनके दूध पीते बच्चों को छीन लेता है; वह उदार, सहानुभूतियों और सत्प्रेरणाओं से भरे मानस में मृत्यु की प्रतिहिंसा जगा देता है।

परन्तु प्रतिहिंसा का यह विष स्थायी नहीं होता। विष स्वयं विष का मरण है। जीवन में मृत्यु सत्य है, पर मृत्यु में जीवन उससे भी अधिक सत्य है। जब आकाश में काली घटाएँ छा जाती हैं, यात्री को मार्ग सुझाई नहीं देता, तभी बिजली कड़कती है, बादल बरस कर फट जाते हैं, और अगणित प्रकाश-विन्दुओं से आकाश भर जाता है। या अन्धकार के क्षितिज पर जीवन की आशा-सा, अमृत-घट लिये चन्द्रमा निकल आता है, और यात्रा-पथ पर प्रकाश की वर्षा होने लगती है।

मानवता आज ऐसे ही मरण के अन्धकार से भरी दुर्गम घाटियों से गुज़र रही है। भयानक और अकल्पनीय विनाश के अट्टहास से मानव-पशु प्रमत्त है। रक्त की प्यास आज चटखी है। जिस महात्मा ने 'अपने पड़ोसी को प्यार करो' का उपदेश किया था, उसी के अनुयायी पड़ोसी के विनाश की ललकार से अपनी वीरता को अर्घ्य दे रहे हैं। उपासना-गृह में क्रास के सामने आग उगलने वाली तोप न केवल शत्रु को चुनौती देती है बल्कि उपासको की धर्मनिष्ठा का उपहास भी करती है। जीवन विडम्बनाओं के बीच डगमग है। प्रेम की निर्मल ज्योति पर हिंसा का धुआँ छा गया है।

—और अपने निकट तो हम मानवता का और भी अशोभन रूप देखते हैं, हमारा देश भूख और रोग की पीड़ा से कराह रहा है। नंगे, भूखे, लक्ष-लक्ष प्राणी यों मर रहे हैं मानो वे मनोविनोद और खेल की चीज़ हों। देश का मातृत्व अर्ध-नग्न है। जन समूह डरा, सहमा भय से विजड़ित है। निष्क्रियता की खीझ से राष्ट्र का मानस तड़प रहा है। फिर भी मुँह बन्द, ज़बान बन्द, क़लम बन्द। और राष्ट्र का रुद्ध पौरुष

ज्वालामुखी के गर्भ में पड़ी बुझती चिनगारियों की भाँति राख का कफ़न लपेटे पड़ा हुआ है।

आत्म-विस्मरण के ऐसे युग में साहसिकता के प्रतीक-सा गान्धी जगत् के मानस-क्षितिज पर, प्रकाश-बिन्दु बना, चमक रहा है। मानो सभ्यता के यात्री से कह रहा हो—पथ इधर है।

एक नवीन युग की चेतना जिसके साथ है, एक स्वप्न जिसके नयनों में भरा है, एक मधुरता जिसके प्राणों के आवेग पर आँचल-सी छा गई है, एक नूतन संसार को जन्म देने की आकांक्षा जिसमें है, वह भारतीय युवक आज जीवन के भयानक संघर्ष में पड़ गया है। आँधियों से उसके पाँव डगमग हैं; जीवन की मधुर कल्पनाओं से आकर्षित, यौवन की मधुऋतु ने जिसमें एक गूँज भर दी है पर जिसके विजड़ित प्राण चाह कर भी कुछ उत्तर नहीं दे पाते, और बोलते-बोलते एक सिसकी मात्र बन कर रह जाते हैं, कुछ करना चाहता है, पर न कर सकने की विवशता की अनुभूति से कभी शिथिल और निराश, तो कभी आकस्मिक उत्साह तरंगों से भर जाने वाला—कठिनाइयाँ ही कठिनाइयाँ जिसके सामने हैं और बन्धन ही बन्धन जिसके चारों ओर बिखरे हुए हैं, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक बन्धनों से जकड़ा हुआ यह भारतीय युवक! मनोवैज्ञानिक गुत्थियों में उलझा हुआ, युग जिसके यौवन को चुनौती दे रहा है; प्राण जिसके जगत् के आवाहन से विकम्पित हैं, हथकड़ियों को खण्ड-खण्ड कर देने की इच्छा लिये, पर परिस्थिति से विवश।

इसीलिए हमारे जीवन के ऊपर एक निराशा का मूर्छित स्वर छा गया है, एक अकेलेपन का भाव हममें भर गया है; आत्मनिष्ठा शिथिल

हुई है। यौवन के बसन्त पर मानों एकाएक पतझड़—खिज़ाँ—बरस पड़ा हो। साहित्य जब जीवन का प्रतिबिम्ब है तो उसमें भी निराशा का स्वर कैसे न आता ? जीवन के कण्टकपूर्ण पथ में चलते-चलते अच्छे से अच्छे साधक यात्री का दम भी फूल जाता है।

कवि क्षेमचन्द्र 'सुमन' केवल एक कवि ही नहीं हैं, बल्कि देश की स्वाधीनता के एक सैनिक भी हैं। उत्सर्ग की भावना उन्हें दोनों दिशाओं में ले गई है। आज भी गुलाम देश के युवक की भाँति उनका जीवन रुद्ध है। यौवन जब उनके हृदय-द्वार की कुंडियाँ खटखटा रहा है, जब दिल स्वप्नों से उलझता है; जब 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' वर्षा की पहली फुहार के साथ, वही सन्देश मन-प्राण में भर जाता है जिसे कवि के मेघदूत ने एक दिन किसी एकाकी यक्ष के प्राणों पर बरसाया था और जिसे शताब्दियों से कोटि-कोटि प्राणी प्रतिवर्ष अनुभव करते आ रहे हैं, तभी जीवन का कर्कश आवाहन इतना विकराल होकर उनके समक्ष आ गया है कि यौवन की मृदुल आकांक्षाएँ मौन पर अस्थिर होकर रह गई हैं। और कवि के जीवन में वह पतझड़ आया है जिसका अन्त दिखाई नहीं देता। कवि की वाणी चीत्कार करती है—

हमको न जग पहचानता
कोई न है अनुमानता
हम वृक्ष के टूटे गिरे पत्ते, हमारा कौन है ?
साथी हमारा कौन है ?

कवि ने जीवन का एक कठोर सत्य कहा है पर वह आंशिक है। अनुभूति के उत्थान के साथ किसी दिन उसको अनुभव करना ही होगा

कि यह उत्सर्ग, यह दान व्यर्थ नहीं है। उसमें कहीं भी अपदार्थता नहीं है। पत्तों का गिरना अन्त नहीं है; वह जहाँ मरण है तहाँ मरण की गोद में नवीन जीवन का अभिषेक, मरण में जीवन की अभ्यर्थना भी है। यह मरण विवशता का मरण नहीं है। कवि जिस दिन इसे अनुभव करेगा उसके स्वर में दृढ़ता और उसके जीवन में गौरव का आत्मोल्लास होगा—एक माता की भाँति अपने रक्त की बूंदों से जीवन को ढालने के गौरव का उल्लास। और वही है जो कवि को द्रष्टा का स्वर प्रदान करता है, जो जीवन को ऊँचाइयों की ओर ले जाता है।

कवि को आत्म-कल्याण के लिए, और इसीलिए समाज के कल्याण के लिए भी, उस वातावरण में, कठिनाइयों के बीच भी, अपनी यह अनुभूति स्थायी करनी होगी:

मलयज मंथर गति से आकर,
छू जाता अन्तस् की वाणी।

उस बैटरी के समान जो सदैव के लिए 'चार्ज' हो चुकी है और जिसका शक्ति-प्रवाह कभी समाप्त न होगा, कवि के अन्तस् की वाणी, जिसे मलयज छू गई है, सदैव अपने व्यथित कलेजे से फूलों का अर्घ्य देती रहे, तभी वह सार्थक होगी—तभी वह आत्मनिष्ठ होगी। जब कवि का निश्चय है—

अपने भग्न हृदय में मैंने,
खींची एक अमिट सी रेखा।

तब उसके लिए शंका की परछाइयों से भरा यह प्रश्न क्यों—

क्या युगों तक ही कठिन,
आराधना करती रहोगी?

आराधना न केवल प्रेम की साधना है बल्कि उनकी सिद्धि, उसकी परिणति भी है। जब तक आराधना है तभी तक आनन्द की अनुभूति है। यह देना ही है जो सत्य है; आत्मार्पण में ही जीवन का रहस्य है। वही आनन्द का शाश्वत स्रोत है।

भारत की वर्तमान परिस्थिति निराशा से भरी हुई है। भारत के भाग्याकाश पर निबिड़ तमिस्रा का आँचल फैल गया है। इसलिए कवि का प्रभात भी, सामान्य जन की भाँति, उससे दूर पड़ गया प्रतीत होता है; किंचित् शिथिल, दर्द भरी वाणी में वह कहता है—

पूछते क्या, आज मेरा सब सुभग संसार खोया।
वेदना से तप्त जग ने, दग्ध उर का घाव धोया॥

प्राण, कब इस यातना का अन्त होगा राम जाने!
आज बन्दी होगये हैं, स्वप्न सब मेरे पुराने।

'बन्दी के गान' में कवि की वाणी व्यथा से विह्वल, चतुर्दिक् दौड़ती है। उसमें अनुभूति है, उसमें वेदना है, उसमें स्वर है, उसमें तड़प है। आराधना के तत्त्व सब उसमें हैं, पर मन उसका बिखरा-बिखरा-सा है। वह तन्मय नहीं हो पाता है और वह तन्मयता ही है जिसको लेकर सब आराधना है।

मैं चाहता हूँ कि कवि हमें निराशा के अन्धकार में उस प्रभात का सन्देश दे जो हमारी ओर आ रहा है और उसका स्वर तप्त भूमि-खण्डों पर बादलों की भाँति छा जाय, मृत्यु पर जीवन की दीक्षा की भाँति।

इस शुभकामना के साथ मैं कवि का अभिनन्दन करता हूँ।

साधना-सदन, प्रयाग —श्री रामनाथ 'सुमन'

बन्दी के गान

: १ :

आज बन्दी हो गये हैं, स्वप्न सब मेरे पुराने !

सिर उठाना पाप है--

जिस विश्व में अविराम गति से ।

क्या प्रयोजन हो भला,

उस विश्व को अथ और इति से ॥

युक्ति-संगत बात को भी, हैं सभी कहते बहाने !

आज बन्दी हो गये हैं, स्वप्न सब मेरे पुराने !!

भावना थी, इस जगत की,
विषमता को दूर कर दूँ।
और दुर्नय के किले को,
एक क्षण में चूर कर दूँ॥
पर समझता था जिन्हें अपना, सभी निकले बिगाने!
आज बन्दी हो गये हैं, स्वप्न सब मेरे पुराने!!

पूछते क्या, आज मेरा,
सब सुभग संसार खोया।
वेदना से तप्त जग ने,
दग्ध-उर का घाव धोया॥
प्राण, कब इस यातना का, अन्त होगा राम जाने!
आज बन्दी हो गये हैं, स्वप्न सब मेरे पुराने!!

२५ मार्च' ४३

: २ :

सपनों से छला गया मैं, अपनों से मला गया मैं !
जगती के गहन तिमिर में, सब से ही दला गया मैं !!

खो गया सुनहला साक़ी
रह गई साध बस बाकी
प्राणों के प्रणय-विपिन में, गानों से चला गया मैं !
सपनों से छला गया मैं, अपनों से मला गया मैं !!

अन्तर में आग छिपाये
पूजा का साज सजाये
अपने सूखे मरु-उर की, तृष्णा से भला गया मैं !
सपनों से छला गया मैं, अपनों से मला गया मैं !!

मैं ढूँढ थका वह कोना
बैठा जिसमें हिय छोना
कहता वह अपने प्रिय के, गानों को जला गया मैं !
सपनों से छला गया मैं, अपनों से मला गया मैं !!

अब भी मानस-घट रीता
कर सका न मैं मन-चीता
हँस दो क्यों निठुर बने हो, क्या ऐसा खला गया मैं !
सपनों से छला गया मैं, अपनों से मला गया मैं !
जगती के गहन तिमिर में, सबसे ही दला गया मैं !!

३ अप्रैल' ४३

: ३ :

तुम चुप-चुप क्या कह जाती हो ?

जब अनजाने तुम दूर हुईं

यौवन में प्रिय भरपूर हुईं

तब सूखे मानस में मेरे, क्यों सरिता-सी बह जाती हो ?

तुम चुप-चुप क्या कह जाती हो ?

मैंने अपनापन खो डाला

जग का विह्वल मन धो डाला।

फिर क्यों मिलने को आतुर-सी, तुम मन मसोस रह जाती हो ?

तुम चुप-चुप क्या कह जाती हो ?

तुमको लख आकुलता बढ़ती

आलिंगन का जादू पढ़ती

मैं यही सोचता हूँ मधुरे, तुम यह सब क्यों सह जाती हो ?

तुम चुप-चुप क्या कह जाती हो ?

६ अप्रैल' ४३

: ४ :

कौन तुम अज्ञात राही ?

इधर पथ है विकट दुर्गम
और घन चहुँ ओर है तम
साज सजने विश्व में, संकट विकट सब आयगा ही।
कौन तुम अज्ञात राही ?

आज नभ में लालिमा क्यों
घेरती हृत्कालिमा क्यों
सतत संगर में विजय को, वीर यह अब जायगा ही।
कौन तुम अज्ञात राही ?

तुम्हें क्या, क्यों यों खड़े हो
बीच में नाहक पड़े हो
सोच क्या करते समर में, वीर जीवन पायगा ही।
कौन तुम अज्ञात राही ?

१० अप्रैल' ४३

: ५ :

सरल जीवन की निधि आई !

जपा के सौरभ से परिपूर्ण
उड़ाती केसर का मृदु चूर्ण
क्षितिज के किस कोने से प्राण, पवन प्रिय सन्देशा लाई ?
सरल जीवन की निधि आई !

उभरते वक्षस्थल से कौन
निमन्त्रित करती मुझको मौन
सकल दिग्वधुओं ने मिल आज, उसी की महिमा है गाई !
सरल जीवन की निधि आई !

अलक कुन्तल, मुख चन्द्र समान
तुम्हारे द्योतित हैं छविमान
उन्हीं की आभा से अम्लान, सभी जग में लाली छाई !
सरल जीवन की निधि आई !

साध है मेरी, तुम अविराम
फलो फूलो जग में अभिराम
तुम्हारा विकसित आनन देख, सफलता मैंने है पाई !
सरल जीवन की निधि आई !

१२ अप्रैल' ४३

: ६ :

कैसे तुझको प्यार करूँ मैं ?

माँ, यह देखो अश्रु बहाती
बाला पीड़ित है अकुलाती
आज देश दुःखित है सब ही, उर का क्या उपहार धरूँ मैं ?
कैसे तुझको प्यार करूँ मैं ?

दास्य-शृंखला तोड़ गिराऊँ
जड़ता औ' भयभीति भगाऊँ
तेरे पूजन के हित ये सब, माँ कटु बन्धन क्षार करूँ मैं।
कैसे तुझको प्यार करूँ मैं ?

अब भी क्या मैं दीन रहूँगा
घोर यातना सभी सहूँगा
देश-प्रेम-स्वातन्त्र्य-समर में, चलकर तुझको अमर करूँ मैं।
कैसे तुझको प्यार करूँ मैं ?

१४ अप्रैल' ४३

: ७ :

जग क्यों कहता है मुझसे, कवि, दर्द भरे गाने मत गाओ !
मत जग के इस अणु-अणु को तुम, विषम वेदना में नहलाओ !!

खोकर निज आशा को मैंने,
बदले में पागलपन पाया ।
और कुटिल-जग की वेदी पर,
अपना है सर्वस्व चढ़ाया ॥

छीन सभी गौरव-गरिमा ली, अब मत अधिक मुझे कलपाओ !
जग क्यों कहता है मुझसे, कवि, दर्द भरे गाने मत गाओ !

संगी छूट गए सब मेरे,
यह जीवन लुटता है जाता।
अपने ही हाथों में अपने-
अरमानों की चिता सजाता॥

दूर हुई जो छवि मुझसे तुम, मत उसको साकार बनाओ!
जग क्यों कहता है मुझसे, कवि, दर्द भरे गाने मत गाओ!

मैं एकाकी दूर क्षितिज के,
तारों से कर मेल रहा हूँ।
अपनी उजड़ी उर-वीथी के,
काँटों से खुल खेल रहा हूँ॥

मैं मुरझाया सुमन सदय हो, अब मत प्राण मुझे ठुकराओ!
जग क्यों कहता है मुझसे, कवि, दर्द भरे गाने मत गाओ!
मत जग के इस अणु-अणु को तुम, विषम वेदना में नहलाओ!

१६ अप्रैल' ४३

: ८ :

तुम मेरे मन की रानी हो !

तव मधुर हास्य औ' चल-चितवन
भरते हैं संसृति में यौवन
पावन अनुरागमयी जग की, तुम कैसी प्रणय-कहानी हो ?
तुम मेरे मन की रानी हो !

प्रिय नवल उषा-सा मृदुल-गात
करता अग-जग को सुधा-स्नात
अम्बर को चीर चली विद्युत-रेखा-सी तुम दीवानी हो !
तुम मेरे मन की रानी हो !

मैं स्तब्ध हुआ कुछ घूम गया
अन्तर सहसा ही झूम गया
क्या अपलक नयनों से करतीं, तुम मेरी ही अगवानी हो ?
तुम मेरे मन की रानी हो !

२० अप्रैल' ४३

: ९ :

आज उस छवि की न जाने, आगई क्यों याद सहसा ?

छा गया दृग में नशा-सा, बढ़ गया उन्माद सहसा !

वह सुघड़ घड़ियाँ कि जिनमें,

दृग-युगल से जल ढरा था।

वह मधुर आराधना,—

जिसको सुमन-मन ने वरा था ॥

छुट गईं, क्यों सरल-मानस, पर हुआ पविपात सहसा ?

आज उस छवि की न जाने, आगई क्यों याद सहसा ?

आज किस आराध्य के-
गुण को सजनि तुम गा रही हो ?
आज किसकी अर्चना को,
मुदित-मन तुम जा रही हो ?
उमड़ता, लख मम हृदय में, प्रबलतम आह्लाद सहसा।
आज उस छवि की न जाने, आगई क्यों याद सहसा ?

खो गया वह मिलन-मन्दिर-
का मदिर अभिसार सूना।
आज उसकी याद में सखि,
बढ़ गया है दुःख दूना॥
हो गया अपना सुखद संसार क्यों, अवसाद सहसा ?
आज उस छवि की न जाने, आगई क्यों याद सहसा ?

प्रेम-दर्शन ही दृगों की
साध थी, बस एक बाकी।
प्रिय-पदों पर प्रणय-जल की,
हो सफल अभिषेक झाँकी॥
किन्तु यह क्यों कामना, उनकी हुई अपवाद सहसा ?
आज उस छवि की न जाने, आगई क्यों याद सहसा ?
छा गया दृग में नशा-सा, बढ़ गया उन्माद सहसा॥

२२ अप्रैल' ४३

: १० :

नीड़ मेरा जल गया रे !

खो गये साथी पुराने
हो गये जाने अजाने
वेदना की वन्हि में पड़, झुलस मन कोमल गया रे !
नीड़ मेरा जल गया रे !

सोचता था जिन्हें अपना
बन गये वे सभी सपना
आज दुर्दिन में मुझे लख, हाय विधि भी छल गया रे !
नीड़ मेरा जल गया रे !

देख ली दुनिया निराली
प्रीति इसमें कठिन आली
छोड़कर किस ओर मुझको, वह सुखद-सा पल गया रे !
नीड़ मेरा जल गया रे !

२४ अप्रैल' ४३

: ११ :

मैं विजन वन में अकेला !

आपदा सम्मुख अड़ी है

स्तब्ध सब सन्तति खड़ी है

आज बन्धन भी कठिन हैं, और दुख भी खूब झेला !

मैं विजन वन में अकेला !

रोकता तलवार कब तक

शत्रुता में, प्यार कब तक

धन्य है यह भूमि जिस पर, अमर नाटक आज खेला !

मैं विजन वन में अकेला !

तुम कहो, मैं हारता हूँ

देश-संकट टारता हूँ

वारता हूँ मातृ-भू पर प्राण, जीवन एक मेला !

मैं विजन वन में अकेला !

२८ अप्रैल' ४३

: १२ :

चिर-युगों से म्लान, मानस-कुसुम फिर तुमने खिलाया !
तार मेरी उर-विपंची का, सजनि, तुमने हिलाया !!

आज मेरी भावना ने,
क्यों प्रबल तूफान बाँधा ?
आज मेरी साधना ने,
लक्ष्य-अनुसन्धान साधा ॥

इन बिछुड़ते पंछियों को, आज फिर तुमने मिलाया !
चिर-युगों से म्लान, मानस-कुसुम फिर तुमने खिलाया !!

जागरण बन खोगया,
मेरा सभी यौवन रँगीला।
किस दिशा को उड़ गया रे,
मौन वह सपना सजीला॥

पूछता विक्षिप्त मैं, उसको सजनि किसने बुलाया?
चिर-युगों से म्लान, मानस-कुसुम फिर तुमने खिलाया॥

सोचता हूँ आज मैं,
तुम यह व्यथा कैसे सहोगी?
क्या युगों तक ही कठिन—
आराधना करती रहोगी?

आज आकर उन दिनों का, ध्यान फिर तुमने दिलाया।
चिर-युगों से म्लान, मानस-कुसुम फिर तुमने खिलाया!
तार मेरी उर-विपंची का, सजनि, तुमने हिलाया!!

३० अप्रैल' ४५

: १३ :

विदा मैं दूँ सुन्दरि क्यों आज ?

तुम्हें कवि ने देखा अनजान

समझ स्वर्णिम रेखा छविमान

मनाया जिसको कर मनुहार, उसे प्रिय भूलूँ क्यों मैं आज ?

विदा मैं दूँ क्यों सुन्दरि आज ?

अगर जाना तुमको था प्राण

जगाये फिर क्यों सोये गान

सुधा से सिंचित उर-घट बीच, छिपाई व्याकुलता क्यों आज ?

विदा मैं दूँ सुन्दरि क्यों आज ?

तुम्हीं से प्रेरित हुआ अनन्य

सभी पा जाता गान अगम्य

तुम्हारी भोली चितवन बीच, बसा है धोखा क्यों ये आज ?

विदा मैं दूँ सुन्दरि क्यों आज ?

१ मई' ४३

: १४ :

आज विदा की इस वेला में, सुन्दरि, क्या संगीत सुनाऊँ ?

इस निर्दय दुनिया में देखा,
असमय फूलों का मुरझाना।
और जुही-सी मृदु कलियों पर,
पागल भ्रमरों का मँडराना॥
किन्तु समय आते वे गिरते, उनको कैसे आज भुलाऊँ ?
आज विदा की इस वेला में, सुन्दरि क्या संगीत सुनाऊँ ?

जब कोकिल ने पंचम स्वर से,
अपने भाव हृदय के खोले।
तभी गुनगुना चुप अन्तर से,
मेरे सुप्त प्राण यों बोले॥

आज नियति के कण-कण से ध्वनि, आती कौन सँदेशा लाऊँ ?
आज विदा की इस वेला में, सुन्दरि क्या संगीत सुनाऊँ ?

अपने भग्न हृदय में मैंने,
खींची एक अमिट-सी रेखा।
मौन पड़ी जर्जर वीणा को,
घुल-घुल कर रोते ही देखा॥

मैं भूला हूँ अपनेपन को, सूने में मन को बहलाऊँ ?
आज विदा की इस वेला में, सुन्दरि क्या संगीत सुनाऊँ ?

१ मई' ४३

: १५ :

वीर जाते हैं समर में !

प्रलय-वीणा बज रही है
साज सेना सज रही है
कर रही आह्वान फिर, ले क्रान्ति निज करवाल कर में।
वीर जाते हैं समर में !

विश्व में आफत मची है
दीन भारत-माँ बची है
आन उसकी के लिए अब, शान्ति से बैठो न घर में।
वीर जाते हैं समर में !

चल पड़ी नव-वीर टोली
भाल पर दे रक्त रोली
स्नान करने शत्रु-शोणित के, अमर उस आज सर में !
वीर जाते हैं समर में !

२ मई' ४३

: १६ :

अरे यहाँ के नर-पशुओं में, दिल का नाम निशान नहीं है।
क्यों करते अनुनय इनसे तुम, इसका यहाँ विधान नहीं है॥

सुनते थे करुणा ने जग की-
दानवता का दिल दहलाया।
और वज्र से भी कठोर-
पत्थर मानवता को पिघलाया॥

यहाँ हमारी पीड़ा का, करता कोई अनुमान नहीं है!
अरे यहाँ के नर-पशुओं में, दिल का नाम निशान नहीं है!!

इनके ही हित को तो; हमने,
यह पावन था यज्ञ रचाया।
अपने ही डसने को क्या यह,
नव विषधर था गले सजाया॥
किन्तु हमारे हित का भी तो, इनमें कुछ अरमान नहीं है!
अरे, यहाँ के नर-पशुओं में, दिल का नाम निशान नहीं है!

जो जग के पैसे से अपने,
भोग-विलास सभी करते है।
दानवता का पात्र गरीबों—
के लोहू से नित भरते हैं॥
दिल में उनके ही अपने, गत-गौरव का अभिमान नहीं है!
अरे, यहाँ के नर-पशुओं में, दिल का नाम निशान नहीं है!!

छीन अतुल निधियां लीं सारी,
पंगु बना हमको है डाला।
धाराओं का कठिन हमारी-
लगा जुबानों पर है ताला॥
आज हमारे ही घर में, हमको ही रिक्त-स्थान नहीं है!
अरे यहाँ के नर-पशुओं में, दिल का नाम निशान नहीं है!
क्यों करते अनुनय इनसे तुम, इसका यहाँ विधान नहीं है!!

२ मई' ४३

: १७ :

साथी हमारा कौन है ?

हमको न जरा पहचानता
कोई न है अनुमानता
हम वृक्ष से टूटे गिरे पत्ते, हमारा कौन है ?
साथी हमारा कौन है ?

जब प्राण खिचने पर हुए
जब नयन मिचने पर हुए
तब भी न सुविधा पा सके, हमको सहारा कौन है ?
साथी हमारा कौन है ?

सब शक्ति, साहस चुक गया
जो ध्येय था बस झुक गया
पाई निराशा की अमा, इसका किनारा कौन है ?
साथी हमारा कौन है ?

१ - मई '४३

: १८ :

आज कैसी वीर, होली ?

है उषा की पुण्य-वेला
वीर-जीवन एक मेला
चल पड़ी है वीर युवकों, की नवल यह आज टोली ?
आज कैसी वीर, होली ?

मातृ-बन्धन काटने को
ध्येय पावन छाँटने को
बाँटने को शत्रु-संगर में, अनोखी लाल रोली !
आज कैसी वीर होली ?

जा रहे हैं क्यों सुभट ये
और भोले निष्कपट से
आज करने प्रियतमा से, जेल में निज प्रेम-होली !
आज कैसी वीर होली ?

१६ मई' ४३

: १६ :

तरुवर पर पत्ता डोल रहा !

जलता जग नित उर-ज्वाला से
पलता जग प्रिय गुण-माला से
प्राणों में पीड़ा भार लिये, वह निज गानों को तोल रहा
तरुवर पर पत्ता डोल रहा !

रोता जग निधि खो जीवन की
बोता संसृति नव-यौवन की
अपने गत जीवन की उलझी, गाँठें वह फिर से खोल रहा !
तरुवर पर पत्ता डोल रहा !

नश्वर जीवन का क्षण-क्षण रे !

नश्वर जगती का कण-कण रे !

सब ही नश्वर यौवन पंथी, कोमल स्वर में पिक बोल रहा !

तरुवर पर पत्ता डोल रहा !

यह झूठा जग सारा सपना !

इसमें नित मिलता है तपना !!

कानों में कौन अचानक रे, नव-जीवन मधु है घोल रहा !

तरुवर पर पत्ता डोल रहा !

१८ मई' ४३

: २० :

आज तुमको बाँधना है !

क्रान्ति है सब ओर होती
शान्ति दुख का कोर खोती
प्रेम-पावन-मार्ग में, निश्चय सभी सुख साधना है !
आज तुमको बाँधना है !

मै सभी विधि से अटल हूँ
भावनाओं में प्रबल हूँ
क्रांति का शुभ फाग रच कर, प्रेम-पावन चाहना है।
आज तुमको बाँधना है !

क्या यही तुम चाहते थे
प्रेम-पावन माँगते थे
तो अरे ! सब हो सफल, यह अब गया, क्यों भांगना है ?
आज तुमको बाँधना है !

२० मई' ४१

: २१ :

मैं बन्दी गृह का दीवाना !

निज प्राण समर्पण करने को

जननी का आँचल भरने को

मैं बढ़ा जा रहा निज पथ पर, जग ने मुझको पागल जाना !

मैं बन्दी गृह का दीवाना !

मैं एक अपरिचित पन्थी हूँ

माँ के मन्दिर का बन्दी हूँ

प्राणों में प्राण सँजो करके, अमरत्व इष्ट मुझको पाना !

मैं बन्दी गृह का दीवाना !

जग-प्राचीरों मे मुग्ध मौन

अपलक निहारता मुझे कौन

मैं उन प्राणों की मुग्ध सृष्टि, जिनका जग ने लोहा माना !

मैं बन्दी गृह का दीवाना !

२३ मई' ४३

: २२ :

मेरी पीड़ा खुल कर रोई !

जब टूट गई विधि जीवन की

जब छूट गई विधि यौवन की

तब सूनेपन में मूक मधुर, मेरी धड़कन है क्यों सोई ?

मेरी पीड़ा खुलकर रोई !

जब किया किनारा अपनों ने

जब दिया सहारा सपनों ने

तब उस चंचल की ज्योति अहो, किस निष्ठुर ने आकर खोई ?

मेरी पीड़ा खुलकर रोई !

जब फिरा हमारा भाग्य अहो

जब घिरा सभी सौभाग्य अहो

तब आज अचानक ही किसने, उर-कालिख चुपके-से धोई ?

मेरी पीड़ा खुलकर रोई !

जब खोया-सा मैं हूँ रहता

जब रोया-सा उर है दहता

तब मौन चुभोता नस-नस में, अगणित शूलों का दल कोई ?

मेरी पीड़ा खुलकर रोई !

३० मई' ४३

: २३ :

भार जीवन हो गया है !

आज असमय में अरे क्यों, सजग यह मन सो गया है ?

भार जीवन हो गया है !

सरल यौवन-रश्मियों को,

जो बुलाता चाप दे दे ।

तरल सुषमित हिम-कणों से,

जो सुलाता थाप दे दे ॥

: ाण, मेरा वह सकल, अभिराम मधुवन खो गया है !

भार जीवन हो गया है !

जिन प्रबलतम भावनाओं-
ने अगम यह मार्ग साधा।
हाय, वे ही रुचिर पथ में,
बन गईं क्यों अतुल बाधा?
खोज में स्वप्निल निलय की, गान उन्मन रो गया है!
भार जीवन हो गया है!

निरत रहता विमल मन से,
जो सुखद आराधना में।
किन्तु, फिर भी खोगई क्यों,
सिद्धि उसकी साधना में॥
आह, मेरे हित सभी, उर-कामना वह धो गया है!
भार भीवन हो गया है!

३० जून' ४३

: २४ :

जलन के स्वर में क्यों अनजान, छले कोकिल ने आकर प्राण !

तिरस्कृत वसुधा के निश्वास
और पीड़ित जन के प्रश्वास
हिलाकर हृत्तन्त्री के तार
कराते अपने में विश्वास ॥

आह इस विरहातुर जग बीच, झुलसते क्यों ये तन मन-प्राण ?
जलन के स्वर में क्यों अनजान, छले कोकिल ने आकर प्राण ?

हमारा चिर यौवन सुकुमार
उठाता नव-आशा का भार ।
मृदुल-मानव किसके हत हाथ,
अरे यह करता है मनुहार ॥
उठी मानस में प्रबल तरंग, तड़प कर मचले फिर से गान !
जलन के स्वर में क्यों अनजान, छले कोकिल ने आकर प्राण ?

उमड़ता प्राणों का निर्भर
सोचता जीवन है दुर्भर ।
विहँसती चंचलता पर आज,
कसकता यौवन है निर्भर ॥
नवेली नव-लतिका-सी शुभ्र, सरलता-निधि खोई अभिराम !
जलन के स्वर में क्यों अनजान, छले कोकिल ने आकर प्राण ?

रसिक उन मधुपों का गुंजन
तड़पते नयनों का अंजन ।
हुआ सपना जाता फिर आज,
सजनि का कैसे हो वन्दन ?
तरल उर-उपवन की वह ज्योति, जली किस ज्वाला में अम्लान ?
जलन के स्वर में क्यों अनजान, छले कोकिल ने आकर प्राण ?

उठी क्यों अन्तस्तल में हूक
साधना मानव की थी मूक

जगी वह फिर से सुनकर आज,
सुभग कोकिल की प्राणद कूक ॥

विफलता पर अपनी क्यों आज, लगाता साधक है अनुमान ?
जलन के स्वर में क्यों अनजान, छले कोकिल ने आकर प्राण ?

भावना थी जो प्रबल नितान्त
हुई क्यों वह फिर से उद्भ्रान्त ।
सुझाया पथ कर जीवन-दान
पथिक ने होकर के परिक्लान्त ॥

जगे फिर प्रियतम का प्रिय भाव, हमारे प्राणों मे अविराम ।
जलन के स्वर में क्यों अनजान, छले कोकिल ने आकर प्राण ?

२६ जून' ४३

: २५ :

मेरे जीवन की सरल साध !

जाती वह नव उल्लास लिए
आती अधरों पर हास लिए
प्राणों में निर्झर-सा झरता, लख उसके मानस को अगाध !
मेरे जीवन की सरल साध !

मलयानिल-सा निश्वास मधुर
कुसुमों-सा उसका हास मधुर
अधरों से प्रिय संकेत सभी, करता नित प्राणों में अबाध !
मेरे जीवन की सरल साध !

आशा-लतिका है कौन यहाँ
भाषा है उसकी मौन यहाँ
है मिला उसी से अविचल यह, मुझको मधुरिम यौवन-प्रसाद !

५ जुलाई' ४३

: २६ :

लुट गया संसार मेरा !

विरह-निशि दूषित-अमा में, सिसकता अभिसार मेरा !

लुट गया संसार मेरा !

मधु पिपासा-भार लेकर,

मैं चला सरिता-किनारे ।

वेदना के शून्य नभ में,

हूँ खड़ा आँखें पसारे ॥

मन न जाने किस दिशा को, उड़ गया अनुदार तेरा ?

लुट गया संसार मेरा !

आज सब ही गान मेरे

मूक औ निष्प्राण रोते।

और फिर वे मौन अविरल,

आँसुओं का भार ढोते॥

कल्पना भी क्यों लगाती, मिलन को शत वार फेरा ?

लुट गया संसार मेरा !

मैं व्यथा किससे कहूँ,

यह प्रश्न है मन में समाया।

टीस ने मुझको रुलाया॥

गत-युगों की याद में क्यों, डालती मनुहार डेरा ?

लुट गया संसार मेरा !

आज आकुल प्राण हैं,

तुम प्रेम करती व्यर्थ सजनी ?

आज मैंने विकलता में,

काट दी सम्पूर्ण रजनी॥

जब छिना वैभव सभी तब, क्यों लगाता प्यार फेरा ?

लुट गया संसार मेरा !

७ जुलाई' ४३

: २७ :

वरदान समझता था जिसको, अभिशाप निगोड़ा वह निकला !

जीवन के सान्ध्य-गगन में जो
थी नवल-चन्द्रिका बन आई।
अधरों की स्मिति से ही जिसके
यौवन-सरिता यह लहराई ॥

जिसको सर्वस्व समर्पित यह, जीवन था, कहाँ गई अमला ?
वरदान समझता था जिसको, अभिशाप निगोड़ा वह निकला !

उलझी अलकें, विस्तृत मस्तक,
उन्नत उरोज थे चाह लिये।
खोया जिसने देखा इनको,
रोया वह कसक कराह लिये ॥
पर हुई न आशायें पूरी, पाषाण बनी वह तो सरला।
वरदान समझता था जिसको, अभिशाप निगोड़ा वह निकला !

लाली से सरल कपोलों की
मानस-शतदल था गया झूम।
अन्तर में सोई पीड़ा ने
मेरे गानों को लिया चूम ॥
कल-कल करती-सी मानस में, आई बन वह सरिता सजला।
वरदान समझता था जिसको, अभिशाप निगोड़ा वह निकला !

जिसके नव-इंगित पर कोमल-
मानव के प्राण मचलते थे।
जिसके मंजुल से दशनों पर
कवि के प्रिय गान बिछलते थे ॥
आश्वासन आने का देकर, क्यों हुई तिरोहित वह विमला ?
वरदान समझता था जिसको, अभिशाप निगोड़ा वह निकला !

२३ जुलाई' ४३

: २८ :

आज सावन-घन घिरे, मैं चिर-व्यथा से जल रहा हूँ !
हाय, एकाकी सजल पथ पर, अरे मैं चल रहा हूँ !!

खो गई दुनिया, मिलन
सपना बना क्यों आज मुझको ?
आज रह-रह कर खटकते
हैं, सभी सुख-साज मुझको ॥

प्राण-प्रेरक उन चरणों की, याद में कर मल रहा हूँ !
आज सावन-घन घिरे, मैं चिर-व्यथा से जल रहा हूँ !!

दीन हीन मलीन काया
ढो रही सन्ताप धीरे ।
सो रही उन्मुक्त वाणी
प्रणय-नद के पुण्य-तीरे ॥
खो प्रबल अनुताप अपना, भावना को छल रहा हूँ !
आज सावन-घन घिरे, मैं चिर-व्यथा से जल रहा हूँ !!

आज कण-कण में सुमुखि,
नव-वेदना लेती उबासी ।
आज जीवन के मिलन में
छा गई तमसा उदासी ॥
क्या हुआ अभिशाप, जो सबको अरे मैं खल रहा हूँ !
आज सावन-घन घिरे, मैं चिर-व्यथा से जल रहा हूँ !

पंख मेरे कट गये सब
कल्पना रोती विजन में ।
रे मिलन की प्रबल उत्कण्ठा
रहेगी, सुप्त मन में ॥
साध ले अब सान्ध्य-जग के, तरणि-सम मैं ढल रहा हूँ ।
आज सावन-घन घिरे, मैं चिर-व्यथा से जल रहा हूँ !
हाय, एकाकी सजल पथ पर, अरे मैं चल रहा हूँ !!

२६ जुलाई' ४३

: २९ :

खोजता अविराम तुमको, मैं विजन में !

साध मेरी, प्राण ही ले जा रही,
आँसुओं से गान गीले गा रही।
क्यों सँजो कर वेदना के दीप वह,
मान मानो आज फिर से पा रही ॥

आज देखा शक्ति होती, क्या मिलन में ?
खोजता अविराम तुमको, मैं विजन में !!

मौन जगती कौन गानों को लिये,
सोचती क्या, मुग्ध मानों को पिये।
आज जर्जर है हुआ सब देह ही,
किस तरह वह फटे प्राणों को सिये॥
ग्लानि होती भावना से शून्य मन में।
खोजता अविराम तुमको, मैं विजन में!!

ध्येय की जो पूर्ति मानव कर सका,
साधना के पन्थ में पग धर सका।
हो अचल जो निरख लेता लक्ष्य को,
भाव वह ही रिक्त उर में भर सका॥
बोल दो, क्या पा सकूँगा. वह सुदिन मैं?
खोजता अविराम तुमको, मैं विजन में!!

जो निराशा को खिलौना मानते,
रूप उसका जो घिनौना जानते।
शक्ति का उपयोग कर संग्राम में,
धैर्यशाली वे, न रोना ठानते॥
आज ध्वनि क्या आ रही है, इस विपिन में?
खोजता अविराम तुमको, मैं विजन में!!

३ अगस्त' ४३

: ३० :

कब किसने हँस प्राण दिये हैं ?

दीपक पर जलता परवाना
चातक मेघों पर दीवाना
दीपक और जलद ने सुन्दरि, कब किसके हित प्राण दिये हैं ?
कब किसने हँस प्राण दिये हैं ?

क्यों चकोर मिलने को आतुर
चन्द्र-किरण लखने को-आकुल
उसके पीड़ामय याचन पर, कब बिधु ने हँस प्राण दिये हैं ?
कब किसने हँस प्राण दिये हैं ?

क्यों उत्सुक नद सिन्धु-मिलन को
क्यों मैं सहता विरह-जलन को
यदि तुम इस रहस्य को समझो, कहो 'सफल वे प्राण दिये हैं !'
कब किसने हँस प्राण दिये है ?

मेरा स्नेह सतत रक्षित है
उर में टीस नई संचित है
मेरे गायन ने अपने स्वर, तुम पर ही बलिदान किये हैं !
कब किसने हँस प्राण दिये हैं ?

५ अगस्त' ४३

: ३१ :

राखी का पावन-पर्व आज !

सब ओर मुदित मन नर नारी
तज प्राण-विकलतायें सारी
जा रहे बढ़े किस पथ पर हैं, बोलो बन्दी के शून्य-साज !
राखी का पावन-पर्व आज !

बहनें राखी ले उठ धाईं
कहतीं—'प्रिय हाथ बढ़ा भाई-
लो बनो वज्र-सम तुम, सारे रिपुओं पर गुरुतम गिरे गाज !
राखी का पावन-पर्व आज !

चिर दास्य-कालिमा मिट जाये
जग सारा फिर से यह गाये
'बहनों की अटल शुभाशीषें, कर दें उन्नत पावन समाज !'
राखी का पावन-पर्व आज !

लो बहन विवश मेरा आशी
आँखें तव दर्शन की प्यासी
हूँ निगड-श्रृंखला से पीडित, रखने पर माँ की पुण्य-लाज !
राखी का पावन-पर्व आज !

हो सफल तुम्हारा यह बन्धन
जग में होवे नव-अभिनन्दन
यह सोया भारत आज करे, तेरी गरिमा का रम्य-साज !
राखी का पावन-पर्व आज !

राखी' २०००

: ३२ :

अरे, बता दो खोया मेरा, सत, शिव, सुन्दर प्यार कहाँ है ?
और रुपहली रातों की वह, प्रेयसि की मनुहार कहाँ है ?

याद मुझे हैं बीती घड़ियाँ,
जिनमें मादकता सोती थी।
रूपसि के पग के कम्पन से,
पायल की रुन-झुन होती थी॥

आह पुलक, चुम्बन से संयुत, सपनों का अभिसार कहाँ है ?
अरे, बता दो खोया मेरा, सत, शिव, सुन्दर प्यार कहाँ है ?

जब मैं यौवन के मधुवन में,
नव उल्लास लिये था आया।
अपने अन्तर का सब कुछ दे,
बदले में कम्पन था पाया॥
चंचल उस छवि की घातों से पीड़ित, वह संसार कहाँ है?
अरे, बता दो खोया मेरा, सत, शिव, सुन्दर प्यार कहाँ है?

मेरी वह अब चाह नशीली,
निर्जन में चुप-चुप रोती है।
आँसू के खारे पानी से,
पीड़ा के छाले धोती है॥
जो मानस की तपन मिटा दे, शीतल वह उपचार कहाँ है?
अरे, बता दो खोया मेरा, सत, शिव, सुन्दर प्यार कहाँ है?

अब बाकी कुछ चाह नहीं है,
अपने में घुट-घुट मरने की।
अब तो चाह बची है केवल,
सूने में आहें भरने की॥
अश्रु-व्यथा से पीड़ित मेरी, वीणा का वह तार कहाँ है?
अरे, बता दो खोया मेरा, सत, शिव, सुन्दर प्यार कहाँ है?
और रुपहली रातों की वह, प्रेयसि की मनुहार कहाँ है?

२६ जून' ४३

: ३३ :

मानवता के प्रथम चरण हे !

तुम हो चिर शाश्वत, नित नूतन
सत्य, अहिंसा में रत प्रतिक्षण
आज़ादी की नवल वधू के, सत, शिव, सुन्दर वरद वरण रे !
मानवता के प्रथम चरण हे !

अमर समर सत्याग्रह स्वामी
हम सब तेरे हैं अनुगामी
कायरता का देव हमारी, कर दो फिर से आज क्षरण रे !
मानवता के प्रथम चरण हे !

जो निष्क्रियता के हैं पुतले
उन्हें 'क्रान्ति' की अमर शपथ दे
है अज्ञान-तमस फैला जो, उसका होवे शीघ्र हरण रे!
मानवता के प्रथम चरण हे!

आज तुम्हारे संयम द्वारा
पैशाचिक बल है सब हारा
हो निश्चय से अखिल जगत् की, तुम ही शुचितर सुखद शरण हे
मानवता के प्रथम चरण हे!

२ अक्तूबर' ४३
गांधी जयन्ती

: ३४ :

रानी, तव तन्द्रिल-अलकों में, उलझे ये लोचन कजरारे !

तुमने अर्चन हित प्रिय मेरे,
था नित नूतन श्रृंगार किया।
मैंने हँस-हँस कर बदले में,
था आँसू का उपहार दिया॥

हो गई मूक थी ये वाणी, दिल के अरमान सभी हारे !
रानी, तव तन्द्रिल-अलकों में, उलझे ये लोचन कजरारे !

कबरी में गुम्फित सरस कुसुम से,
जब तव रूप निखरता था।
तब प्यासा मानस उसको लख,
नित निज पीड़ा को हरता था॥
मेरी वीणा ने भी सुन्दरि, तुम पर निज स्वर हैं सब वारे!
रानी, तव तन्द्रिल-अलकों में, उलझे ये लोचन कजरारे!

वेला में आज विवशता की,
तुमने रानी क्या दान किया?
केवल स्मृतियाँ ही शेष बचीं,
जिनका हमने गुण-गान किया॥
युग बीते देवि प्रतीक्षा में, उमड़े उर-घट हैं बेचारे!
रानी, तव तन्द्रिल-अलकों में, उलझे ये लोचन कजरारे!

३ अक्टूबर' ४३

: ३५ :

आज सुना बाहर के जग में, जगमग दीवाली होती है !

किन्तु सोचता हूँ भारत की, सूनी मानवता सोती है ?

एक ओर भूखों का क्रन्दन

बीमारी का भीषण नर्त्तन ।

ऐसे में किसको सूझी है,

लक्ष्मी का होवे अभिनन्दन ?

सच्ची लक्ष्मी वस्त्र-रहित हो, भारत की नारी सोती है !

आज सुना बाहर के जग में, जगमग दीवाली होती है !

आज गान मेरे हैं बन्दी
कौन खींचता है प्रतिद्वन्दी ।
क्यों मानस है विकल हो रहा,
माता की रखने को बिन्दी ?
पीड़ित जग की मूक-व्यथा, इन प्राणों में दृढ़ता बोती है !
आज सुना बाहर के जग में, जगमग दीवाली होती है !

बन्दीगृह की प्राचीरों का
लाचारी की तस्वीरों का ।
खौल गया क्यों रक्त अचानक,
इन माँ के नूतन हीरों का ?
आज विवश मेरी कविता भी, रो-रोकर आँखें खोती है !
आज सुना बाहर के जग में, जगमग दीवाली होती है !

अरी, यहाँ क्यों आई कमले,
बसे यहाँ भिखमंगे कँगले !
आज प्रकाशित होंगे तुमसे,
बाहर के धनिकों के बँगले ॥
यहाँ ग़रीबी औ' अलमस्ती, जर्जर प्राणों को ढोती है !
आज सुना बाहर के जग में, जगमग दीवाली होती है !

प्राणों का दीपक अर्पित है
इसमें जीवन-स्नेह बहुत है ।

इसे जलाने वाला गौरव,

रिपु के चरणों में मर्दित है ॥

अरे, आँसुओं की माला में, नीरवता मुक्ता पोती है !

आज सुना बाहर के जग में, जगमग दीवाली होती है !

स्वागत आज करें क्या तेरा

है दासत्व-अमा ने घेरा ?

आज हमारी इस बस्ती में,

छाया है घनघोर अँधेरा ॥

आज शून्य छाया ही मेरे, घावों को चुप-चुप धोती है !

आज सुना बाहर के जग में, जगमग दीवाली होती है !

किन्तु, सोचता हूँ भारत की, सूनी मानवता सोती है !

२८ अक्टूबर' ४३
दीपावली

: ३६ :

सजनि, मत पूछो कभी का, मैं तुम्हारा हो चुका हूँ !
एक इंगित पर तुम्हारे, प्राण, तन-मन खो चुका हूँ !

साध ले मधु-पान की मैं
था तुम्हारे पास आया !
किन्तु, सम्मेलन हमारा
नियति को किंचित् न भाया ।।

याद में स्वर्णिम दिनों की, हृदय-दीप सँजो चुका हूँ ।
सजनि, मत पूछो कभी का, मैं तुम्हारा हो चुका हूँ !

आज इतनी दूर ला-
पटका, उसी ने क्रूर मन से।
ध्वस्त कर आशा-भवन को,
हर लिया सौरभ सुमन से॥
क्या कहूँ, कितनी अतुल पीड़ा सहेजे सो चुका हूँ!
सजनि, मत पूछो कभी का, मैं तुम्हारा हो चुका हूँ!

आज दृढ़तम इन शलाखों
में मचलता प्यार मेरा।
खोजता जल-कण छिपाये
नयन में तुमको चितेरा॥
विमल तव पावन-प्रणय का, बीज मन में बो चुका हूँ!
सजनि, मत पूछो कभी का, मैं तुम्हारा हो चुका हूँ!

निज करों से हाय मैंने
अटल विष की बेल बोई।
नष्ट कर सहसा गया रे
दुर्दिवस में खेल कोई॥
खिन्न मन चुपचाप कितनी, विरह-निशि में रो चुका हूँ!
सजनि, मत पूछो कभी का, मैं तुम्हारा हो चुका हूँ!

क्या न बीते दिन मिलेंगे,
सजनि फिर से विजन-पथ में।

जब चलूँगा मैं समुद-मन,

चढ़ विजय के रुचिर-रथ में ॥

आज जीवन के कुटिल बन्धन, सभी मैं ढो चुका हूँ !

सर्जान, मत पूछो कभी का, मैं तुम्हारा हो चुका हूँ !

एक इंगित पर तुम्हारे, सभी तन, मन खो चुका हूँ !

२२ नवम्बर' ४३

: ३७ :

मुझको जग पहचान न पाया !

मेरे पावन प्रेम-निलय का, सुख भी वह अनुमान न पाया !

मुझको जग पहचान न पाया !

मैंने भोलेपन से अपने

नष्ट किये जीवन के सपने

जो मग में कटु शूल चुभे, मैं उनकी पीड़ा जान न पाया !

मुझको जग पहचान न पाया !

मैंने जग-हित तन-मन वारा
अर्पित की जीवन की धारा
फिर भी मानवता का प्रतिनिधि, सह मेरा बलिदान न पाया !
मुझको जग पहचान न पाया !

मुझे नहीं ऐसी आशा थी
'क्रन्दन' ही दृग की भाषा थी
किन्तु हृदय-द्रावक वह मेरे, स्वर का पथ सन्धान न पाया !
मुझको जग पहचान न पाया !

साध यही जीवन में मेरे
नीरवतामय साँझ-सबेरे
आकुल करती थी मानस को, उसका भी कुछ भान न पाया !
मुझको जग पहचान न पाया !

वह अतीत की झाँकी सुन्दर
लखूँ आज फिर से जी भरकर
किन्तु न पूर्ण हुई वह, कटु जग भी मेरा कर ध्यान न पाया !
मुझको जग पहचान न पाया !

१२ दिसम्बर' ४३

: ३८ :

आज अचानक सुमुखि तुम्हारी, याद कहो क्योंकर है आई ?
बन्दी के सूने मानस में सुखद-तड़ित बन कर मुसकाई ।

युग बीते हैं प्यार तुम्हारा
पाये, नन्दन-वन की रानी !
आँखों से अविरल मेघों-से,
झर-झर झरते प्राण दिवानी !

तुमने सतत उपेक्षा मेरी करके, क्या नव-निधि है पाई ?
आज अचानक सुमुखि तुम्हारी, याद कहो क्योंकर है आई ?

मेरा हृदय-कुसुम, सौरभ-सी
तुमको खोकर ध्वस्त हुआ है।
जब से दूर हुआ हूँ प्रेयसि,
सुख का दिनकर अस्त हुआ है॥

जो आशा की किरण बची थी, उस पर भी अँधियारी छाई।
आज अचानक सुमुखि तुम्हारी, याद कहो क्योंकर है आई?

तुम्हें भूलने का मैं जितना
ही प्रयास करता हूँ बाले!
उतनी ही बढ़ जाती पीड़ा
उर में, उसको कौन सँभाले?

सभी ओर दिखती है मुझको, दुख की ही दारुण परछाईं।
आज अचानक सुमुखि तुम्हारी, याद कहो क्योंकर है आई?
बन्दी के सूने मानस में, सुखद-तड़ित बनकर मुसकाई!

१६ जनवरी' ४४

: ३६ :

मलयज के प्राणद झोंकों में, मुझको नव-आह्वान मिला है!
देवि होलिके, सच ही तुमसे, मेरा जीवन-कुसुम खिला है!

युग से जो पीड़ा मानस में,
काँटे-सी कलका करती थी।
चुप-चुप चिर-दुःखित प्राणों की,
चेतनता को नित हरती थी॥

आज उसे आमूल मिटाने का, प्रिय जीवन-मन्त्र मिला है!
मलयज के प्राणद झोंकों में, मुझको नव-आह्वान मिला है!

जिस आशा में इस जीवन की,
सारी निर्मलतायें वारीं।
और उनींदे इन नयनों ने,
बरसाया आँसू-जल खारी॥

आज उसी अक्षय-निधि के प्रति, करता मानव सरल गिला है!
मलयज के प्राणद् झोंकों में, मुझको नव-आह्वान मिला है!

निज वैभव पा सकने की थी,
अतुल साध मेरे तन-मन में।
किन्तु न पूर्ण हुई वह देखो,
घिरी अमा फिर से जीवन में॥

आज विमल ज्योत्स्ना से सुन्दरि, मेरा भावुक हृदय हिला है!
मलयज के प्राणद झोंकों में, मुझको नव-आह्वान मिला है!

अब तो भग्न हुए सपने सब,
तुम जीवना का सार उँडेलो।
नस-नस में मादकता भर प्रिय,
खुलकर सुखद होलिका खेलो॥

आज समझ लो खुल खिलने का, तुमको यह वरदान मिला है!
मलयज के प्राणद् झोंकों में, मुझको नव-आह्वान मिला है!
देवि होलिके, सच ही तुमसे मेरा मानस-कुसुम खिला है!!

६ मार्च' ४४
होलिका

: ४० :

लो प्रणाम, अनगिन वीरों की पुण्य-याद जलियाँवाले !

अरे युगों की चट्टानों पर,
तेरा अंकित नाम अमर है।
जन-जन के मन में हहराता,
तेरा दाहक मूक समर है॥
देखो अनिल, अनल, भू, नभ में,
यही तुम्हारा गान प्रखर है।
युवको, बलि पर प्राण चढ़ा दो,
जाता जीवन स्वर्ण-प्रहर है।

सदय, तुम्हारे नव-इंगित ने, सोये भाव जगा डाले !
लो प्रणाम, अनगिन वीरों की पुण्य-याद जलियाँवाले !

खोल-खोल गाथायें तुमने,
बलि से अपनी फिर दुहरा दीं।
'डायर' की जलती छाती पर,
अपनी पुण्य-ध्वजा फहरा दी॥

और युगों से सुप्त जगत् में,
तरल-क्रान्ति की छवि छहरा दी।
सुन जिसके भीषक से रव को,
पत्थर की छाती वहरा दी॥

अरे, सहेजे थे जिनको हम युग से, हाय छिले छाले!
लो प्रणाम, अनगिन वीरों की पुण्य-याद जलियाँवाले!

आज अरे मानवता के हित,
मिटने का अवसर आया।
आज विकल भारत-जननी पर,
संकट का बादल छाया॥

बिखरे बाल, करों में कड़ियाँ,
म्लान हुई कंचन - काया।
आज सभी युवकों को रण में,
हँस-हँस कर मरना भाया॥

क्या परवाह इन्हें जेलों की, दुश्मन आज पड़ा पाले!
लो प्रणाम, भारत-वीरों की अमिट-याद जलियाँवाले!

'सन् उन्नीस' तुम्हारे यश की,
धवल-पताका लिये खड़ा ।
'अमृत' के 'सर' का कण-कण भी,
भाल समुन्नत किये अड़ा ॥
'वीर शिवा' 'झाँसी की रानी'
के गौरव का ध्यान पड़ा ।
इसी लिये अणु-अणु भी उसका,
सहता आया कष्ट कड़ा ॥

रिपु-दंशन-हित तेरे तरु भी, आज बने विषधर काले ।
लो प्रणाम अनगिन, वीरों की पुण्य-याद जलियाँ वाले !

जिन वीरों ने अमिट साधना
करके निज जीवन वारा ।
और बहा दी हँस-हँस करके
अपने लोहू की धारा ॥
आज गूँजता है प्रतिध्वनि बन,
उन रूहों का स्वर प्यारा ।
देखो बोल-बोल कर कहती,
अब भी यह पावन-कारा ॥

'करो बग़ावत फिरसे अब तुम, अमर बाग जलियाँवाले !'
लो प्रणाम, अनगिन वीरों की, पुण्य-याद जलियाँवाले !!

१३ अप्रैल' ४४
जलियाँवाला दिवस

: ४१ :

फिर सच्चे मानव कहलावें !

आज मचा है महानाश का,
कैसा यह संघर्ष भयङ्कर !
आग लगी है धू--धू करके,
मानव के अणु-अणु प्रलयङ्कर ॥

सभी ओर से सुन पड़ता है,
'मेरा स्वत्व आज तुम दे दो ।'
जीवन कहता-'मृत्यु-चाप पर,
चढ़ा प्राण के बन्धन भेदो ॥'

यह विभीषिका का नर्त्तन क्यों,
होता नर के रोम-रोम में।
आज जगत् के प्राणों का सुख,
खोज रहा पथ व्यर्थ व्योम में॥

क्यों प्रलयंकर काल बुलाता,
नर को निज कंकाल पसारे।
कहता-'मानवता के पुतलो,
मैं काटूँगा बन्धन सारे॥'

क्यों अधर्म की विजय धर्म पर
होती जग कुछ जान न पाता!
क्यों पशुता के स्वर सुन मेरे.
मानव का साहस मिट जाता?

पाप निगल क्यों रहा धर्म को,
झूठ सत्य को निज मुँह फाड़े।
कहता पूंजीवाद कड़क कर
'बजें मेरे जगमें नगाड़े॥'

नाश-नाश हा महानाश की,
प्रतिध्वनि होती दसों दिशा में।
भय के मारे आज जगत् के,
प्राणी छिपते कुहू निशा में॥

इस नैराश्य-निशा का हम से.
क्या न अन्त होने पावेगा ?
उजडे उपवन बीच नहीं क्या,
सुमन वृन्त पर लहरावेगा ॥
सच्ची मानवता का तब ही,
जग में फहरावेगा झंडा ।
भोले मानव नियम तोड़ यह,
भैंस उसी की जिसका डंडा ॥
इसीलिए प्रण ठानें हम सब,
उठकर कर्म-क्षेत्र में आवें ।
सत्य, अहिंसा व्रतधारी बन,
फिर सच्चे मानव कहलावें ॥

१८ अप्रैल' ४४

: ४२ :

मौन सभी उन संकेतों का, रूपसि पथ अनजान हो गया।
मेरी यौवन-फुलवारी का, वह बसन्त-वरदान खो गया ॥

तुमने दिल से जो सींचा था,
मेरा प्रणय-विपट अनजाने।
मिला धूल में दिया उसी को,
प्रेयसि, अभिनय कर मनमाने ॥

मृदु नूपुर-गति पर क्यों तेरी, यह मेरा अरमान सो गया।
मौन सभी उन संकेतों का, रूपसि, पथ अनजान हो गया ॥

जग-जीवन में तुम यौवन का-

लिये भार अविराम चलीं थी।

मेरे बन्द दृगों की आभा,

तुम्हें देखकर ही मचली थी॥

छवि के पीडामय अभिनय मे, मेरा उर छविमान हो गया।

मौन सभी उन संकेतों का, रूपसि, पथ अनजान हो गया॥

अपने मृदुल उरोजों में तुम,

थीं पीडा का भार छिपाये।

हूक लिये अन्तर में तुमने,

कितने ही मानव ललचाये॥

सच समझो उर, सजनि तुम्हारी चितवन से म्रियमाण हो गया!

मौन सभी उन संकेतों का रूपसि, पथ अनजान हो गया॥

तव नव-इंगित को प्रिय मैंने,

अतुल प्यार से था अपनाया।

उस चंचल पद्गति पर ही,

अपना सुन्दर संसार लुटाया॥

मूक तुम्हारी गिरा मध्य, सब जीवन का अवदान हो गया!

मौन सभी उन संकेतों का, रूपसि, पथ अनजान हो गया!

नई प्रेरणा आज मुझे दो,

जिससे मैं नव गीत बनाऊँ।

और तुम्हारी हृद्वीणा पर,

सपनों का संगीत सजाऊँ ॥

चुप-चुप ये आगमन तुम्हारा, मुझमें नव अभिमान बो गया।

मौन सभी उन संकेतों का, रूपसि, पथ अनजान हो गया ॥

मेरी यौवन-फुलवारी का, वह बसन्त-वरदान खो गया!

२० अप्रैल' ४४

: ४३ :

तुम्हीं से पाई थी जो हार, उसे मैं कैसे दूँ उपहार ?

हार है जीवन में सुख-मूल,
हार में छिपा हुआ है शूल।
इसी से कहते हैं क्यों लोग,
उसे मधु-यौवन के अनुकूल ।।

तभी हैं टेके घुटने आज, सफल मानव ने हो लाचार।
तुम्हीं से पाई थी जो हार, उसे मैं कैसे दूँ उपहार ?

सुना था जग में अनन्य,
जिसे ले सका न कोई अन्य।
तुम्हारी आभा का वरदान,
शुभे, पा हुआ आज कवि धन्य॥
उसी को प्राणों की नव भेंट, चढ़ानी मुझको है स्वीकार।
तुम्हीं से पाई थी जो हार, उसे मैं कैसे दूँ उपहार?

व्यथित मैं जग का प्राणी मौन
जगत् में मेरा अपना कौन?
निशा से पाकर स्वप्न अगम्य,
व्यथा से करता पूरित भौन॥
हठीले कवि से भी तुम मान, अरी क्यों करती हो अनुदार।
तुम्हीं से पाई थी जो हार, उसे मैं कैसे दूँ उपहार?

सरल, तव मनुहारों को तोल,
व्यथित क्या कहते पिक के बोल!
अरी भोली मानिनि अनजान,
तुम्हारा झूठा है सब मोल॥
रहा क्या उन्नत इस जग बीच, किसी की यौवन-छवि का भार?
तुम्हीं से पाई थी जो हार, उसे मैं कैसे दूँ उपहार?

सजग मैं होता जब अविराम
सुधा से पाता सुखद विहान।

नियति के संकेतों के बीच,
तुम्हीं को पाता हूँ अभिराम !
सफल मैं कर लूँ जीवन-साध, सफल मेरा हो यह संसार !
तुम्हीं से पाई थी जो हार, उसे मैं कैसे दूँ उपहार ?

सलिल की चंचल लघु लहरी
सुधा से पूरित है छहरी
सभी नभ-नक्षत्रों में मूक,
पताका तेरी है फहरी ॥
सजीले यौवन का उन्माद, तुम्हीं पर जाता है बलिहार !
तुम्हीं से पाई थी जो हार, उसे मैं कैसे दूँ उपहार !

२२ अप्रैल' ४४

: ४४ :

याद आती है पुरानी, रे पिकी, मत बोल
सोगईं जो प्रेम कलियाँ, उन्हें फिर मत खोल

मैं अभागा ढूँढता हूँ,
आज निज आश्रय पुराना।
वे सुरा-सी अरुण छवियाँ,
पुलक, चुम्बन का सताना॥

होगये सब स्वप्न, उनका कर न तू प्रिय मोल!
याद आती है पुरानी, रे पिकी, मत बोल!!

जानता हूँ मंजरित तरु-
लख सखे, तू फूल जाता ।
किन्तु विरही यक्ष की,
नव वेदना को भूल, गाता ॥
ध्याब कर अलका-पुरी का, हृदय जाता डोल !
याद आती है पुरानी, रे पिकी, मत बोल !!

आज मंजुल याद उसकी,
तोड़ती पाषाण-कारा ।
आज रह-रहकर बरसती-
है अनाविल अश्रु-धारा
स्निग्ध झिलमिल मोतियों का, आज कर ले तोल !
याद आती है पुरानी, रे पिकी, मत बोल !
सो गई जो प्रेम-कलियाँ, उन्हें फिर से खोल !!

२२ अप्रैल' ४४

: ४५ :

भूले-से याद किया कैसे, रानी इन सूनी घड़ियों में ?

मैं पल-पल पीड़ा से घुलकर,
सोचा करता हूँ निज अतीत ।
वे स्वप्न हुई जीवन की नव-
मादक घड़ियाँ, चुम्बन सभीत ।।
ले पुलक, सहज सिहरन तन में,
रानी, अपना तुम मृदुल भार-
दे देती थीं, कस-कस बन्धन,
गा-गा कर पावन प्रणय-गीत ।।

है आग लगी कैसे रानी, उन रिम-झिम पावस झड़ियों में ?
भूले से याद किया कैसे, रानी, इन सूनी घड़ियों में ??

मलयज मन्थर गति से आकर
छू जाता अन्तर् की वाणी।
जिसकी मचलन से जीवन को,
रो-रोकर खोते हैं प्राणी ॥
री प्राण, तुम्हीं जीवन-नभ में,
दामिनि-सी शोभा देती हो—
मेरे अन्तर का तम हरने,
गाती आओ तुम कल्याणी!

क्या करती हो तुम मूक प्रश्न, आँसू की झरती लड़ियों में?
भूले से याद किया कैसे, रानी, इन सूनी घड़ियों में?

मैं तो ऊबा था जीवन से,
भूली थी आह सभी बातें।
वे यौवन के रिसते निर्झर,
वे प्यार भरी चंचल घातें ॥
बोलो तो दुनिया पागल को-
कैसे यों प्रश्रय देती है,
जिससे बनती हैं देवी विषम,
वे मान भरी मधु की रातें ॥

है आज नया जीवन पाया, तुम से कारा की कड़ियों में!
भूले से याद किया कैसे, रानी, इन सूनी घड़ियों में!!

४ मई' ४४

: ४६ :

जीवन की प्यास तुम्हीं रानी !

तुम हो बसन्त की मादक-श्री
तुम हो चातक की कोमल-पी
मेरी मलयानिल तन्वि, तुम्हें शोभा देती साड़ी धानी !
जीवन की प्यास तुम्हीं रानी !

खोकर निज तन का आकर्षण
ले आह भरी चंचल चितवन
क्यों बरसाती हो आज अरी, अनुरंजित आँखों का पानी ?
जीवन की प्यास तुम्हीं रानी !

मत रो-रोकर पीड़ा बोलो
इस साधक के प्रण को तोलो
क्या समझ रही हो सत्य, तुम्हें जो बहकाता जग है मानी ?
जीवन की प्यास तुम्हीं रानी !

मैं तो वैसा ही निश्छल हूँ
जो था प्रण उस पर अविचल हूँ
सोचो, समझो, ग़लती न करो, दुखदायी होती नादानी !
जीवन की प्यास तुम्हीं रानी !

६ मई'४४

: ४७ :

हर निशा में खोजता हूँ, सुमुखि मैं चितवन तुम्हारी !

वह नवल सरिता-पुलिन पर,

प्रिय तम्हारा किंकिणी-रव ।

और मिलनोत्सुक उरों का,

तरल आलिंगन भरा जब ॥

ध्यान में है घूम जाता, ले युगों का खेद भारी !

हर निशा में खोजता हूँ, सुमुखि मैं चितवन तुम्हारी !

जब कि अर्पित कर दिया था,
सजनि तुमने प्यार भोला।
और भुज-बन्धन कठिन कर,
उर-पटों का द्वार खोला ॥
याद है, तुमने कहा था—'अमिट यह संसृति हमारी !'
हर निशा में खोजता हूँ, सुमुखि मैं चितवन तुम्हारी !

आज सब सपना हुआ सखि,
आँसुओं के तार टूटे।
चुम्बनों के सुभग पिच्छल,
सिसकते संसार छूटे ॥
रो रही कवि की विजन में, मूक यह कविता बिचारी !
हर निशा में खोजता हूँ, सुमुखि मैं चितवन तुम्हारी !

याद करना भी किसी को,
क्या हुआ अभिशाप जग में ?
आज रह-रह कर सताते-
हैं मुझे सन्ताप मग में ॥
मैं अकेला रह गया हूँ, प्राण, जगती विमुख सारी।
हर निशा में खोजता हूँ, सुमुखि मैं चितवन तुम्हारी !

पत्र लिखने की सुमुखि क्या,
अब दया तुम कर सकोगी ?
क्या कभी संत्रस्त कवि की,
वेदना को हर सकोगी ?

आज कण-कण में समाया, गान यह आह्लादकारी !
हर निशा में खोजता हूँ, सुमुखि मैं चितवन तुम्हारी !

१८ मई'४५

: ४८ :

रे कौन मिला निर्जन-पथ में ?

देखा मैंने जर्जर-जीवन
काँटों से पूरित जग-उपवन
मैं देख न पाया छवि प्रिय की, सुषमा के सुन्दर-से रथ में !
रे कौन मिला निर्जन-पथ में ?

उसने देख मुझ को आते
यौवन के गायन को गाते
मैं गहन समस्या जीवन की, प्रिय समझ न पाया इति-अथ में !
रे कौन मिला निर्जन-पथ में

मैं जितना ही आकुल रहता
अविरत प्राणों को वह दहता
खोया-सा मौन अरे बैठा रहता हूँ, शून्य विजन पथ में !
रे कौन मिला निर्जन पथ में ?

१० जुलाई' ४४

: ४६ :

मुझको कब किससे प्यार मिला ?

मैं तो दुर्भाग्य लिये अपना,
जगती में यों ही आया हूँ।
दुख द्वन्द्वों की सन्तापमयी,
मैं चलती फिरती काया हूँ ॥
मैं सच कहता हूँ आज तुम्हें, जो मिला मुझे, अनुदार मिला !
मुझको कब किससे प्यार मिला ?

अपने इस मृदुतम जीवन के,
सपनों को वार दिया मैंने ।
पाने को प्रिय का आलम्बन,
कष्टों को प्यार किया मैंने ॥
फिर भी न अरे पहचान सका, यह जग, दुख-पारावार मिला ?
मुझ को कब किससे प्यार मिला ?

कितने युग तक प्रिय बोलो तो,
कसकन का साथ रहेगा यों ?
घुल-घुल कर नित अन्तर मेरा,
आँखों की राह बहेगा यों ॥
क्या कभी न कह पाऊँगा मैं 'मुझको मेरा संसार मिला ?'
मुझको कब किससे प्यार मिला ?

१२ जुलाई' ४४

: ५० :

नव उषा की किरण आई !

ज्योति की नव हेम-लेखा
मुदित रवि ने झाँक देखा
तम भगा, पंछी जगे, जग को जगाती किरण आई !
वह उषा की किरण आई !

जलज सर में फुल्ल-कुसुमित
देखता है आज विस्मित
अखिल वसुधा में मलय-केसर उड़ाती किरण आई !
रे उषा की किरण आई !

मुग्ध मधुपों ने निहारा

खुल गई जलजात-कारा

यामिनी के बन्दियों को भी छुड़ाती किरण आई !

मृदु उषा की किरण आई !

अलि, कमल के अंक में जा

कह रहा चुपचाप यह गा—

'देख लो जीवन नया हमको दिलाती किरण आई !'

नव उषा की किरण आई !

१३ जुलाई' ४४

: ५१ :

'बन्धन्मुक्त हुआ मैं' कहता, यह जग कैसी है नादानी ?
पंख कटे पंछी-सा मैं तो, खोज न पाता दाना-पानी।

मेरी साँसें बिकी हुई हैं-
सत्ता के झूठे मानों में।
आज बिखर ही गया अरे सब,
गौरव उसके खलिहानों में॥

यहाँ मौन मानवता रोती, समझ न पाता यह जग मानी !
'बन्धमुक्त हुआ मैं' कहता, यह जग कैसी है नादानी ?

भूखे पेट यहाँ सोते हैं,
अरे कुटुम्बी प्राणी मेरे।
कौन समझ पाया कितने दुख,
नित इनको रहते हैं घेरे ?
झूठा ढोंग किये बैठी है, दानवता अब भी तूफानी !
'बन्धनमुक्त हुआ मैं' कहता यह जग कैसी है नादानी ?

एक समय आयेगा ऐसा,
जो कंचन के घड़े दबाये-
बैठे हैं, उनकी उर-ज्वाला,
अरे बुझेगी नहीं, बुझाये ॥
अपने घर ही की ज्वाला में, सभी जलेंगे वे लासानी !
'बन्धनमुक्त हुआ मैं' कहता, यह जग कैसी है नादानी ?

सम्बलहीन बटोही-सा मैं,
बैठा हूँ बीहड़ निर्जन में।
खोज नहीं पाता अपने गत-
जीवन का सुख सूनेपन में ॥
क्या न फिरेंगे मेरे दिन भी, बतला दे सच्चा अभिमानी !
'बन्धनमुक्त हुआ मैं' कहता, यह जग कैसी है नादानी ?
पंख कटे पंछी-सा मैं तो, खोज न पाता दाना-पानी ॥

मुक्ति के बाद
१५ जुलाई'४४

: ५२ :

देवि, युगों के बाद मिलन यह, आज बना वरदान !

सन्ध्या चुप-चुप खो जाती थी,
मौन-प्रकृति सब सो जाती थी।
बन्दी के विरही-मानस में,
पीडा निशि कुछ बो जाती थी॥

सजनि, तुम्हारी सुधि-साधों का, आज मिला प्रतिदान !
देवि युगों के बाद मिलन यह, आज बना वरदान !

सोता था तारे गिन-गिन कर,
मुझे खिजाते वे झिल-मिल कर।
छिप जब वे जाते अम्बर में,
रोता था मानस तिल-तिल कर॥
उनसे आती याद तुम्हारी, खो जाते अरमान!
देवि, युगों के बाद मिलन यह, आज बना वरदान!

मौन वीणा मेरी, अपने पर
रोती थी अणु-अणु सपने पर।
प्राण समुद्र उद्यत थे रानी,
मानवता के हित खपने पर॥
कारा के सूने जीवन में, तुम न मिलीं छविमान!
देवि, युगों के बाद मिलन यह, आज बना वरदान!

धैर्य सदा आँचल में लेकर,
इन रिसते घावों को सेकर।
बिता रहा था उस जीवन को,
लघु-लघु-सी तरणी को खेकर॥
आज बिछुड़ते दो प्राणों का, पुण्य हुआ अवदान!
देवि, युगों के बाद मिलन यह, आज बना वरदान!

मुक्ति के बाद मिलन पर

: ५३ :

रानी, क्यों रोती हो तुम, इस दुख का भी अन्त कभी होगा ?
जो संकट की घड़ियाँ आईं, उनका भी अन्त कभी होगा ?

चुपचाप व्यथा का भार सँजो,
तुम जीवन पर संकट झेलो।
मेरी अक्षय-निधि, तुम इनको
सुख-मूल समझ अविरत खेलो॥

क्या दैव बधिर है हुआ, जो न दुख का भी अन्त कभी होगा ?
रानी, क्यों रोती हो तुम, इस दुख का भी अन्त कभी होगा ?

घर के इन मुट्ठी दानों पर,
जीवन को आज छले जाओ।
जग की सत्ता का ध्येय यही,
घुट-घुट निज पन्थ चले जाओ॥
तुम आह न भरना इस पथ पर, इसका भी अन्त कभी होगा ?
रानी, क्यों रोती हो तुम, इस दुख का भी अन्त कभी होगा ?

तुम रुग्णा हो, मैं रोगी हूँ,
माता को आज हुआ क्या है ?
परवाह किसे जग में कवि की,
उपचार अरे इसका क्या है ?
पैसों में सुख बिकता रानी, इसका भी अन्त कभी होगा ?
रानी, क्यों रोती हो तुम, इस दुख का भी अन्त कभी होगा ?

हम अपने पथ पर बढ़े चलें,
यौवन का दीप जला करके।
निज स्वत्व-प्राप्ति के हित अपनी
सत्ता के प्राण गला करके॥
बेकार न बलि होगी रानी, दुख का भी अन्त कभी होगा ?
रानी, क्यों रोती हो तुम, इस दुख का भी अन्त कभी होगा ?

बोलो हँसकर, खिलकर रानी,
संकट के सागर लहरायें।

हम फिर भी विजय-ध्वजा अपनी,

घुस-घुस कर उनमें फहरायें ॥

फिर सभी दिशायें बोलेंगी, दुख का भी अन्त कभी होगा ?

रानी, क्यों रोती हो तुम, इस दुख का भी अन्त कभी होगा !

जो संकट की घड़ियाँ आईं, उनका भी अन्त कभी होगा !

मुक्ति के बाद प्रतिबन्ध में

: ५४ :

चल रहा निर्वाह कैसे, कवि विषमता में तुम्हारा ?
पूछता जग आज मुझसे, क्या तुम्हारा है सहारा ?

लो बता दूँ तुम्हें सच ही,
आज मेरा ध्येय क्या है ?
आँसुओं से सिक्त उर का,
आज मेरे गेय क्या है ?
भूल सब ही मैं गया हूँ,
आज जग में श्रेय क्या है ?
किसे कहता जग सफलता,
और जग में प्रेय क्या है ?

झूलता है रात दिन, मेरे दृगों में विश्व-हारा ?
चल रहा निर्वाह यों ही, इस निराशा में हमारा ?

क्या बताऊँ, आज विधि से
भी हुआ अभिशप्त हूँ मैं।
प्राण रहते भी कुटिलता
ने किया संत्रस्त हूँ मैं॥

जी रहा हूँ बोझ बनकर,
सब तरह से ध्वस्त हूँ मैं।
आज पीड़ा को सँभाले,
गान में अभ्यस्त हूँ मैं॥

रो रहा है आज मेरा, मूक यह परिवार सारा?
चल रहा निर्वाह यों ही, इस विषमता में हमारा?

सोचता हूँ चल सकेगी,
आह कब तक यह विषमता?
छीन सुख जिसने लिया रे,
सौख्य, साहस, प्रेम, ममता॥

आज अपने भी पराये
होगये हैं देख क्षमता।
आँसुओं का वेग कवि की
वज्र आँखों से न थमता॥

आँख बदली है जगत् ने, होगई विपरीत धारा!
चल रहा निर्वाह यों ही, इस कठिनता में हमारा?

हैं सभी विपरीत मेरे,
प्राण में अवसाद छाया।
और यौवन के विपिन में,
क्रूर झंझावात आया॥
आज मेरे परिजनों ने
भी कठिन संताप पाया।
म्लान पड़ती जा रही है,
प्रेयसी की स्वर्ण-काया॥

पर कठिन आपत्तियों के सामने चलता न चारा?
चल रहा निर्वाह यों ही, नज़रबन्दी में हमारा?

पूछते हो आज ऐसी,
विषमता में व्यर्थ तुम भी।
वह ग़रीबी, देख जिसको
काँप जाये क्रूर यम भी॥
छा रही कवि की कुटी में,
और घन चहुँओर तम भी--
खींचता है रुग्ण जर्जर,
देह का अवशिष्ट दम भी॥

आज जीने को जगत में, सह रहा हूँ कठिन कारा?
चल रहा निर्वाह यों ही, इस ग़रीबी में हमारा?

तुम समझते हो कि जग के,
वैभवों से प्यार मेरा
है नहीं, पर क्या करूँ सब
लुट गया संसार मेरा ॥
आज मेरा घर मुझे है
बन रहा अभिशाप डेरा।
आज मेरे गान, मेरे--
प्राण, पर है क्रूर फेरा ॥

किन्तु फिर भी खे रहा हूँ, मस्त जीवन-यान प्यारा।
कान दे सुन ले जगत्, यों कर रहा कवि है गुज़ारा ॥

मुक्ति के बाद प्रतिबन्ध में

: ५५ :

गीत मत समझो, निहित इनमें हृदय की आग मेरे !

मैं प्रताड़ित एक युग से,
दासता में पिस रहा हूँ।
जीर्ण जीवन की तरी ले,
आह, चुप-चुप रिस रहा हूँ॥
छेदतीं अनगिन व्यथायें, मौन मन को आज मेरे !
गीत मत समझो, निहित इनमें हृदय की आग मेरे !

क्या बिगड़ जाता जगत् का,
जो मुझे कुछ मान देता।
आह, करुणा कर तनिक तो,
निज हृदय में स्थान देता ॥
पर हुआ विपरीत, मेरे प्राण को अवसाद घेरे !
गीत मत समझो, निहित इनमें हृदय की आग मेरे !

कौन सा अभिशाप लेकर,
मैं जगत में आज आया !
जो घृणा, अपमान, वंचन,
विश्व में सब ओर पाया ॥
औ' निराशा की अमा भी, है लगाती क्रूर फेरे !
गीत मत समझो, निहित इनमें हृदय की आग मेरे !

आज इस घनघोर तम में,
साध मेरी एक बाकी।
सूख जायें पुण्य-मधुवन,
और रूठें सत्य-साकी ॥
निठुर जग, छलना भरे होवें सफल वरदान तेरे !
गीत मत समझो, निहित इनमें हृदय की आग मेरे !

मुक्ति के बाद प्रतिबन्ध में

: ५६ :

पंछी मुक्त-गगन में डोले।

जो जीवन में गहन-निराशा-

थी, वह दूर हुई [illegible]न आशा

जीवन के चिर-व्यथित क्षणों की आह, हृदय के बंधन खोले।

पंछी मुक्त-गगन में डोले!

युग-युग की पीड़ा का खप्पर

खाली आज हो रहा सत्वर

यौवन के मादक सपनों की याद, विजन में चुप-चुप डोले!

पंछी मुक्त-गगन मे डोले।

जग को आज चुनौती देता
निज जर्जर तरणी को खेता
बन्दी कहता सकल विश्व से; बन्धन-मुक्त आज तू हो ले।
पंछी मुक्त-गगन में डोले !

निविड तमिस्रा का वह आँचल
दूर हुआ आया सुख का पल
रे मन, निज रिसते घावों को, सुख के सरल वारि में धो ले।
पंछी मुक्त-गगन में डोले

प्रतिबन्ध हटने पर

'मल्लिका' पर अभिमत

युगान्तरकारी कवि श्री निराला

'मल्लिका' के दर्शन कर हृदय हर्षित हो गया। साधना-प्रधान कवि की इस वाणी में विरह-शृङ्गार का मादक राग है। सरल-ललित पदावली, स्वस्थ-भावना और कारुण्य का तीव्रता उनकी कविता के चमत्कारात्मक रूप हैं।

प्रसिद्ध आलोचक बा० गुलाबराय एम. ए.

'मल्लिका' के गीतों में प्रगति-काव्य की भावुकता और निजीपन पर्याप्त मात्रा में है। उनका विरह-निवेदन संयत होने के कारण अपने प्रभाव में तीव्रतर है। उसमें वर्तमान युग की अभावमयी करुणा की अव्यक्त-सी छाया है।

साहित्य सन्देश, आगरा

'मल्लिका' के गीतों में कवि के हृदयोद्रेक की अभिव्यक्ति है, जिनमें पीड़ा, विषाद एवं निराशा की स्वाभाविक सृष्टि हुई है। गीत सभी वियोगान्त हैं। भाषा सरल तथा भाव स्पष्ट एवं सजीव हैं।